CBSE पुनरावृति नोट्स
CLASS - 8 hindi
पाठ - 11
जब सिनेमा ने बोलना सीखा
- प्रदीप तिवारी

पाठ का सारांश- इस पाठ में भारतीय सिनेमा जगत में आए महत्त्वपूर्ण बदलाव को रेखांकित किया गया है। 14 मार्च 1931 की ऐतिहासिक तारीख को पहली बोलने वाली फ़िल्म 'आलम आरा' का प्रदर्शन हुआ। उससे पहले मूक फ़िल्में बनती थीं जो काफ़ी लोकप्रिय हुआ करती थीं। इस तिथि के बाद भारतीय सिनेमा ने पीछे मुड़कर नहीं देखा।

भारतीय सिनेमा जगत में फ़िल्म 'आलम आरा' को पहली सवाक् फ़िल्म होने का गौरवपूर्ण स्थान प्राप्त है। 14 मार्च, 1931 को जब यह फ़िल्म प्रदर्शित हुई तो उसके पोस्टर पर लिखा था-"वे सभी सजीव हैं, साँस ले रहे हैं, शत-प्रतिशत बोल रहे हैं, अठहत्तर मुर्दा इंसान जिंदा हो गए, उनको बोलते, बातें करते देखो।" इसी दिन भारतीय सिनेमा ने बोलना सीखा था, इसलिए यह महत्त्वपूर्ण दिन था। उस समय अवाक् फ़िल्मों की लोकप्रियता अपने चरम शिखर पर थी। लोकप्रियता के इस दौर में सवाक् फ़िल्मों का नया दौर शुरू हो चुका था।

पहली सवाक् फ़िल्म 'आलम आरा' के निर्माता अर्देशिर एम० ईरानी थे। उन्होंने 'शो बोट' नामक सवाक् फ़िल्म देखी और सवाक् फ़िल्म बनाने की सोची। उन्होंने पारसी रंगमंच के नाटक के आधार पर फ़िल्म की पटकथा बनाई तथा कई गाने ज्यों-के-त्यों रखे। इस फ़िल्म में कोई संगीतकार न होने से उन्होंने उसकी धुनें स्वयं बनाई। इसके संगीत के लिए तबला, हारमोनियम और वायलिन-इन्हीं तीन वाद्य-यंत्रों का प्रयोग किया गया। डब्ल्यू० एम० खान इसके पहले पाश्वगायक थे। इनके द्वारा गाया गया पहला गाना 'दे दे खुदा के नाम पर प्यारे, गर देने की ताकत है था। इस फ़िल्म में साउंड था, इस कारण इसकी शूटिंग रात में करनी पड़ती थी। रात में शूटिंग होने के कारण कृत्रिम प्रकाश की व्यवस्था करनी पड़ी। यही प्रकाश प्रणाली आने वाली फ़िल्मों के निर्माण का आवश्यक हिस्सा बनी। इससे पूर्व मूक फ़िल्मों की शूटिंग दिन में पूरी कर ली जाती थी। इस फ़िल्म से एक ओर जहाँ अनेक तकनीशियन और कलाकार मिले वहीं अर्देशिर की कंपनी ने डेढ़ सौ से अधिक मूक तथा एक सौ से अधिक सवाक् फिल्में बनाई।

पहली सवाक् फ़िल्म 'आलम आरा' में हिंदी-उर्दू के मेल वाली हिंदुस्तानी भाषा तथा गीत-संगीत और नृत्य के अनोखे संयोजन ने इसे लोकप्रिय बनाया। जुबैदा इस फ़िल्म की नायिका थीं और नायक थे-विट्ठल। विट्ठल को उर्दू बोलने में मुश्किल होती थी। अपने समय के प्रसिद्ध नायक विट्ठल को इस कमी के कारण फ़िल्म से हटाकर मेहबूब को नायक बना दिया गया। विट्ठल ने मुकदमा कर दिया। मुकदमे में उनकी जीत ने उन्हें पुनः नायक बना दिया। इससे विट्ठल की सफलता और लोकप्रियता बढ़ती गई। उन्होंने लंबे समय तक नायक और स्टंटमैन के रूप में कार्य किया। इसके अलावा इस फ़िल्म में सोहराब मोदी, पृथ्वीराज कपूर, याकूब और जगदीश सेठी जैसे अभिनेताओं ने भी काम किया। 14 मार्च, 1931 को मुंबई के 'मैजेस्टिक' सिनेमा में प्रदर्शित यह फ़िल्म आठ सप्ताह तक 'हाउसफुल' चली। दस फुट लंबी तथा चार महीनों में तैयार इस फ़िल्म को देखने के लिए दर्शकों की भीड़ लगी रहती थी। इसे देखने के लिए उमड़ी भीड़ को नियंत्रित करना पुलिस के लिए मुश्किल हो जाता था।

सवाक् फ़िल्मों का विषय पौराणिक कथाएँ, पारसी रंगमंच के नाटक, अरबी प्रेम-कथाएँ आदि हुआ करती थीं। सामाजिक विषय पर बनी फ़िल्म 'खुदा की शान' का एक किरदार महात्मा गाँधी जैसा था। इस कारण अंग्रेजों ने इस फ़िल्म पर गुस्सा प्रकट किया। सवाक् फ़िल्मों की शुरुआत के 25 साल बाद इसके निर्माता-निर्देशक अर्देशिर को सम्मानित किया गया। इस अवसर पर जब उन्हें 'भारतीय सवाक् फ़िल्मों का पिता' कहा गया तो उन्होंने विनम्रता से कहाँ "मुझे इतना बड़ा खिताब देने की आवश्यकता नहीं है। मैंने तो देश के लिए अपने हिस्से का जरूरी योगदान दिया है।"

सवाक् फ़िल्मों के इस दौर में पढ़े-लिखे अभिनेताओं की जरूरत महसूस की गई। अब अभिनय के साथ-साथ संवाद भी बोलना पड़ता था, इसलिए गायन प्रतिभा को भी महत्त्व दिया जाने लगा। इस दौर में अनेक 'गायक-अभिनेता' पर्दे प आए। फ़िल्मों में हिंदी-उर्दू के मेलजोल वाली जन प्रचलित भाषा को महत्त्व मिला। सिनेमा में दैनिक और सार्वजनिक जीवन का प्रतिबिंब अब बेहतर ढंग से प्रस्तुत किया जाने लगा। इस समय अभिनेता-अभिनेत्रियों की लोकप्रियता का असर भी दर्शकों पर खूब पड़ रहा था। 'माधुरी' फ़िल्म की नायिका सुलोचना की हेयर स्टाइल खूब लोकप्रिय हुई। औरतें अपने बाल की केश-सज्जा सुलोचना की तरह करती थीं। यह फ़िल्म भारत के अलावा श्रीलंका, बर्मा (वर्तमान म्यांमार) और पश्चिम एशिया में खूब पसंद की गई।

भारतीय सिनेमा के जनक दादा साहब फाल्के को भी सवाक् सिनेमा के जनक अर्देशिर ईरानी की उपलब्धि का सहार लेना पड़ा, क्योंकि सिनेमा का नया युग शुरू हो चुका था।